विश्वानर एवं गृहपति की शिवाराधना

पूर्वकाल की बात है, नर्मदा नदी के रमणीय तट पर नर्मपुर में एक विश्वानर नामक मुनि थे, जो भगवान् शिव के भक्त और बड़े पुण्यात्मा थे। एक समय भगवान् शिव का ध्यान करके वे मन-ही-मन विचार करने लगे कि चारों आश्रमों में कौन सा आश्रम सत्पुरुषों के लिये विशेष कल्याणकारक है। सभी आश्रमों के गुण-अवगुण का विचार करके विश्वानर ने अपने योग्य उत्तम कुल की कन्या के साथ विधिपूर्वक विवाह किया। मन को संयम में रखनेवाले विश्वानर मुनि धर्म, अर्थ और काम का तदनुकूल समय में संग्रह करते थे।

वे ब्राह्मण कर्मकाण्ड के ज्ञाता थे, अत: पूर्वाह्नकाल में देवयज्ञ, मध्याह्न में मनुष्ययज्ञ (अतिथि-सेवा) तथा अपराह्न में पितृयज्ञ करते थे। इस तरह बहुत समय बीत जाने पर उन ब्राह्मण-देवता की पतिव्रता पत्नी शुचिष्मती एक दिन अपने पति से इस प्रकार बोली-'प्राणनाथ! स्त्रियों के योग्य जितने भोग हैं, वे सब आपके प्रसाद से मेरे द्वारा पूर्ण रूप से भोगे गये हैं। अब आप मुझे भगवान् शंकर के सदृश पुत्र प्रदान करें।'

शुचिष्मती का वचन सुनकर विश्वानर मुनि ने क्षणभर समाधि लगाकर मन-ही-मन इस प्रकार विचार किया-'अहो! मेरी इस पत्नी ने यह कैसा अत्यन्त दुर्लभ वर माँगा है। परन्तु मुख में वचनरूप से स्थित होकर साक्षात् भगवान् शिव ने ही यह बात कही है, अत: इसे टालने या बदलने की भी सामर्थ्य किसमें है।' यों सोच-विचार कर विश्वानर मुनि ने पत्नी से कहा-'प्रिये! ऐसा ही होगा।' उसे इस प्रकार आश्वासन देकर मुनि तपस्या के लिये चल दिये। उन्होंने काशी में जाकर मणिकर्णिका का दर्शन किया। विश्वेश्वर आदि संपूर्ण शिवलिंगों का दर्शन करके सभी कुण्डों, बावड़ियों, कुओं और तालाबों में स्नान किया।

काशी में ऐसी भूमि नहीं है, जहाँ कोई शिवलिंग न हो। परन्तु वीरेश्वर लिंग के समान शीघ्र सिद्धि प्रदान करनेवाला तथा धर्म, अर्थ काम और मोक्ष देनेवाला दूसरा लिंग नहीं है। शिवभक्तों में श्रेष्ठ चन्द्रमौलि तथा भरद्वाजजी पूर्वकाल में वीरेश्वर की आराधना करके उनकी महिमा का गान करते हुए उन्हीं में लीन हो गये। नागराज शंखचूड ने भी प्रतिदिन रात में बार-बार आरती उतारते हुए छ: महीने में सिद्धि प्राप्त कर ली। इस प्रकार सोच कर विश्वानर ने तीनों काल वीरेश्वर की आराधना करने का निश्चय किया ताकि उन्हें अपनी स्त्री की रुचि के अनुसार शीघ्र पुत्र प्राप्त हो सके।

धीर बुद्धिवाले विश्वानर ने ऐसा निश्चय करके व्रत की दीक्षा ले नियम ग्रहण किया। वे एक मासतक प्रतिदिन केवल एक बार भोजन करके रहे। फिर दूसरे मास में दिन भर उपवास करके केवल रात में ही भोजन करते रहे। फिर एक मासतक बिना माँगे जो कुछ मिल जाय, उसी पर निर्वाह करते

रहे। उसके बाद पूरे एक मासतक उन्होंने अखण्ड उपवास किया। तदनन्तर एक मासतक दूध पीकर, एक मासतक साग और फल खाकर, एक महीनेतक मुठ्ठीभर तिल चबाकर और एक महीनेतक केवल जल पीकर जीवन-निर्वाह किया। तत्पश्चात् एक मासतक वे केवल पंचगव्य पीकर रहे, एक मासतक चान्द्रायण व्रत में लगे रहे, एक मासतक कुशा के अग्रभाग पर जितना जल आता है, उतना ही पीकर तप करते रहे और एक मासतक उन्होंने केवल वायु का आहार किया। इसके बाद तेरहवें मास में गंगाजी के जल में स्नान करके वे प्रातःकाल ज्योंही भगवान् वीरेश्वर के समीप गये, त्योंही उस लिंग के मध्य भाग में उन्हें एक विभूतिभूषित अष्टवर्षीय सुन्दर बालक दिखायी दिया। वह बालक नंगा था और उसके मुख पर हास्य की छटा छा रही थी। वह मनोहर बालक वैदिक सूक्तों का पाठ करता और खेल-खेल में ही हँसता था।

उसे देखकर विश्वानर के शरीर में आनन्दातिरेक से रोमांच हो आया और वे गद्‌गद कण्ठ से बोल उठे-'नमस्कार है, नमस्कार है।' तत्पश्चात् उन्होंने आठ श्लोकों से शिव की स्तुति की जिसे अभिलाष्टक[1] स्तोत्र कहते हैं। स्तुति करके विश्वानर अतिशय आनन्दमग्न हो दण्ड की भाँति पृथ्वी पर पड़ गये। इतने में ही बालकरूपधारी शिव बोल उठे-'भूदेव! तुम कोई वर माँगो। तुमने अपनी धर्मपत्नी शुचिष्मती के विषय में अपने मन में जो अभिलाषा की है, वह थोड़े ही समय में पूर्ण होगी। महामते! मैं स्वयं ही शुचिष्मती के गर्भ में आकर तुम्हारा पुत्र होऊँगा। उस समय सब देवताओं का परम प्रिय मैं गृहपति (अग्नि) के नाम से विख्यात होऊँगा। तुमने जो इस अभिलाष्टक नामक पवित्र स्तोत्र का पाठ किया है, उस स्तोत्र को तीनों समय मेरे समीप यदि पढ़ा जाय तो यह सम्पूर्ण कामनाओं को देनेवाला होगा। इस स्तोत्र का पाठ पुत्र, पौत्र और धन देनेवाला होगा, सब प्रकार की शान्ति करनेवाला और सम्पूर्ण आपत्तियों का नाशक होगा। इतना ही नहीं, यह स्वर्ग, मोक्ष तथा सम्पत्ति देनेवाला भी होगा। एक वर्षतक पाठ करने पर यह स्तोत्र पुत्र प्रदान करनेवाला होगा।' ऐसा कहकर बालकरूपधारी महादेवजी अन्तर्धान हो गये और विप्रवर विश्वानर भी अपने घर लौट आये।

तदनन्तर विश्वानर द्वारा विधिपूर्वक गर्भाधान-संस्कार सम्पन्न होने पर उनकी स्त्री शुचिष्मती गर्भवती हुई। तत्पश्चात् शुभ ग्रह एवं नक्षत्रों के योग में शुचिष्मती के गर्भ से एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। स्वयं ब्रह्माजी ने आकर उस बालक का जातकर्म-संस्कार किया और यह बताया कि इस बालक का नाम गृहपति होगा। बालक के लिये उचित रक्षा-विधान करके विष्णु एवं महादेवजी के साथ सबके प्रपितामह ब्रह्माजी हंस पर आरूढ़ हो चले गये। पाँचवें वर्ष में उपनयन-संस्कार करा कर विश्वानर ने उसे वेद पढ़ाना प्रारम्भ किया। तीन ही वर्ष में उस बालक ने अंग, पद और क्रम के साथ विधिपूर्वक

1. अभिलाष्टकस्तोत्र मूलरूप से इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है, इसलिये इसकी पुनरावृत्ति यहाँ नहीं की जा रही है।

सम्पूर्ण वेदों का अध्ययन कर लिया। विनय आदि सद्गुणों से सम्पन्न उस बालक ने गुरुमुख को साक्षी-मात्र बनाकर समस्त विद्याएँ ग्रहण कर लीं।

तदनन्तर नवें वर्ष में गृहपति जब माता-पिता की सेवा में संलग्न था, उस समय इच्छानुसार विचरनेवाले देवर्षि नारदजी विश्वानर की पर्णशाला में आये और अर्घ्य एवं आसन ग्रहण करने के पश्चात् उन्होंने गृहपति को अपने पास बुला उसके दाहिने हाथ को अच्छी तरह से देखा। उसे देखने के बाद नारदजी ने कहा-'विप्रवर! तुम्हारा यह पुत्र समूची पृथ्वी का पालन करनेवाला होगा और दिक्पाल पदवी धारण करेगा। इसके पास महान् ऐश्वर्य होगा। इसमें राजा होने के लक्षण हैं। यह अत्यन्त सुलक्षण बालक है; किन्तु सर्वगुणसम्पन्न, समस्त शुभ लक्षणों से लक्षित तथा सम्पूर्ण निर्मल कलाओं से युक्त होने पर भी बाहरहवें वर्ष की अवस्था में इसको बिजली की अग्नि से भय है।' ऐसा कहकर नारदजी लौट गये। नारदजी के चले जाने पर माता-पिता को शोक से घिरा हुआ देख गृहपति ने मुसकराते हुए कहा -'माता और पिताजी! आप लोगों को इतना भय क्यों हो रहा है? आप दोनों के चरणों की धूलि से मेरे शरीर की रक्षा हो रही है। मुझे काल भी अपना ग्रास नहीं बना सकता, फिर बेचारी बिजली तो बहुत छोटी वस्तु है। आप दोनों मेरी प्रतिज्ञा सुनें। यदि मैं आप दोनों का पुत्र हूँ, तो ऐसा प्रयत्न करूँगा जिससे बिजली स्वयं मुझसे भयभीत होगी। जो साधु-महात्माओं को सबकुछ देनेवाले और सर्वज्ञ हैं, काल के भी काल, कालकूट विष का भक्षण करनेवाले महाकाल हैं, उन भगवान् मृत्युञ्जय की आराधना करके मैं निर्भय हो जाऊँगा।' पुत्र की यह बात सुनकर बूढ़े ब्राह्मण-दम्पति इस प्रकार बोले-'बेटा! तुम भगवान् शिव की शरण में जाओ। इससे बढ़कर हित की दूसरी कोई बात नहीं हो सकती। भगवान् शिव आशातीत फल देनेवाले और काल का भी संहार करनेवाले हैं। जिसने तीनों लोकों की सम्पत्ति का अपहरण कर लिया था, उस महाभिमानी जालंधर को जिन्होंने अपने चरणों के अंगुष्ठ की रेखा से प्रकट हुए चक्र के द्वारा मार डाला था, जो ब्रह्मा आदि देवताओं के एकमात्र उत्पादक हैं और अपनी महिमा से कभी च्युत नहीं होते, उन सम्पूर्ण विश्व की रक्षा के लिये चिन्तामणिस्वरूप भगवान् शिव की शरण में जाओ।'

माता-पिता की आज्ञा पाकर गृहपति उनके चरणों में प्रणाम करके काशी में गया। वहाँ भगवान् विश्वनाथ का दर्शन करके उसने अत्यन्त कठोर नियम ग्रहण किया। अपनी उपासना के लिये उसने एक शिवलिंग की स्थापना की। वह प्रतिदिन गंगा के जल से भरे हुए एक सौ आठ कलशों के वस्त्र द्वारा छाने हुए जल से भगवान् शिव को स्नान कराता और उन्हें नीलकमल की माला समर्पित करता था। वह माला 1008 पुष्पों से बनी हुई होती। गृहपति 15-15 दिन पर कन्द-मूल-फल का भोजन करता। इस तरह उसने छः मास व्यतीत किये। फिर छः महीनोंतक उसने एक-एक पक्ष पर सूखे पत्ते चबाये। छः महीनोंतक उसने जल की एक-एक बूँद का ही आहार किया और छः महीनोंतक केवल वायु-भक्षण किया। इस प्रकार तपस्या करते हुए उस बालक के दो वर्ष व्यतीत हो गये। जन्म से बारहवें

वर्ष में वज्रधारी इन्द्र उसके समीप आये और बोले–'तुम कोई इच्छित वर माँगो, मैं उसे दूँगा।'

बालक बोला – इन्द्र! मैं आपको जानता हूँ, किन्तु आपसे वर नहीं माँगूँगा। मुझे वर देनेवाले तो भगवान् शंकर हैं।

इन्द्र ने कहा – बालक! मैं देवताओं का भी देवता हूँ। मुझसे भिन्न दूसरा कोई कल्याणकारी शंकर नहीं है। तुम मूर्खता छोड़कर मुझसे वर माँगो।

बालक बोला – पाकशासन! मैं भगवान् शिव के अतिरिक्त दूसरे किसी देवता से याचना नहीं कर सकता।

उसकी यह बात सुनकर इन्द्र के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। उन्होंने भयानक वज्र उठाकर उस बालक को भयभीत किया। विद्युत की सैकड़ों ज्वालाओं से व्याप्त वज्र को देखकर ब्राह्मण–बालक को देवर्षि नारद के वचन का स्मरण हो आया और वह भय से व्याकुल होकर मूर्छित हो गया। इसी समय अज्ञानान्धकार को दूर करनेवाले गौरीपति भगवान् शंकर वहाँ प्रकट हो गये और अपने स्पर्श से उस बालक में नवजीवन का संचार–सा करते हुए बोले–'वत्स! तुम्हारा कल्याण हो, उठो, उठो।' उसने रात में सोये हुए की भाँति बंद नेत्रकमलों को खोलकर और उठकर देखा, आगे भगवान् शिव विराजमान हैं। महादेवजी को पहचान कर गृहपति के नेत्रों में आनंद के आँसू छलक आये। वह एक क्षणतक ठगा हुआ–सा खड़ा रहा। स्तुति, नमस्कार अथवा कुछ निवेदन करने में भी समर्थ न हुआ। तब भगवान् शंकर मुसकराते हुए बोले–'वत्स गृहपति! तुम भयभीत न होओ। इन्द्र–वज्र अथवा काल भी मेरे भक्त का अनिष्ट करने में समर्थ नहीं है। मैंने ही इन्द्र का रूप धारणकर तुम्हें डराया था। भद्र! मैं तुम्हें वर देता हूँ, तुम अग्निपद के भागी बनो। तुम सम्पूर्ण देवताओं के मुख होओगे। अग्ने! तुम समस्त प्राणियों के भीतर विचरण करो। इन्द्र (पूर्व) और धर्मराज (दक्षिण) के मध्य में तुम दिक्पाल बनकर रहो और अपना राज्य ग्रहण करो। तुमने जो यह शिवजी की मूर्ति स्थापित की है, तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्ध होगी। ऐसा कहकर गृहपति अग्नि को दिक्पाल पद पर अभिषिक्त करके भगवान् शंकर उसी शिवमूर्ति में समा गये।

(उपर्युक्त लेख गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा संवत् 2050 में प्रकाशित कल्याण के 'स्कंदपुराणांक' के काशीखण्ड पूर्वार्ध के अध्याय 10 एवं 11 पर आधारित है। यही कथा नगण्य अन्तर के साथ शिवपुराण की शतरुद्रसंहिता के अ. 13–15 में भी पायी जाती है।)

❀❀❀❀❀❀